क्या झूठ कल्याणकारी हो सकता है?

केशव कहि न जाये का कहिये। महाकवि ने ऐसा कहा तो एक अन्य प्रसंग में था पर अभी हाल ही में सम्पन्न एक संगोष्ठी में एक पत्रकार ने जब यह कहा कि लोगों के हितों के लिए झूठ भी बोलना पड़े तो मीडिया और मीडियाकर्मियों को ऐसा करना गलत नहीं होगा। एक अन्य पत्रकार से जिनका जीवन ही पत्रकारिता में बीता है, उनसे इस बारे में मंतव्य बताने के लिए कहा तो उन्होंने भी वही कहा जो संगोष्ठी में कहा गया था। अब जिस पत्रकारिता का आधार ही तथ्य और सत्य हो उसे झूठ तथा असत्य का सहारा लेना, नैतिक बताना कितना ठीक है, इसी पर केशव की यह उक्ति याद आ गई। सचमुच ही क्या ऐसा किया जाना चाहिये, इस पर विचार करें।

समाचार के जिन आधारों को मूल्य माना जाता है, उनमें तथ्य और लोगों का हित दोनों ही शामिल हैं। निकटता और नवीनता के साथ ही समयानुकूलता भी उन्हीं गुणों में माने जाते हैं। सबसे अधिक जोर इसी बात पर दिया जाता है कि जो भी कहा जाये वह सत्य हो, तथ्यों के आधार पर हो। अभी मीडिया की आलोचना भी इसी आधार पर की जा रही है कि उसकी विश्वसनीयता में कमी आई है। विश्वसनीयता की यह कमी इसी सत्य-तथ्य की कमजोरी या अपूर्णता के कारण ही है। यह भी है कि बाजारवाद और निहित स्वार्थ के साथ खड़े होने के कारण भी सत्य-तथ्य कमजोर हुए हैं। ऐसे में यह विचार क्या पत्रकारिता और मीडिया को प्रामाणिक और विश्वसनीय बनाने में मददगार होगा, इस पर उन सभी लोगों को सोचना होगा जो लोगों के हितों के लिए अर्धसत्य या असत्य का सहारा लेने के पक्षधर हैं।

एक परिचित पत्रकार ने यह भी बताया कि धर्म भी लोक और व्यक्ति कल्याण के लिए असत्य का सहारा लेने को बुरा नहीं मानता। वह यह भी कहते हैं कि किसी का जीवन बचाने के लिए तो झूठ का सहारा धर्मराज कहे जाने वाले युधिष्ठिर ने भी लिया था। इस व्याख्या पर बहुत से लोग सहमत नहीं होंगे कि वह झूठ था या सत्य को संदेह में बदलना था। एक साथी ने इस्लाम का हवाला देते हुए इसी तरह की बात बताई। उन्होंने कहा कि इस्लाम में मसलहत की सलाह दी गई है। मसलहत यानी युक्ति से सच को ऐसे कहना जिससे सच बना तो रहे पर पर्दे में हो जाये। इस बारे में उन्होंने पैगम्बर मोहम्मद साहब से जुड़ा एक प्रसंग भी सुनाया जिसका तात्पर्य था कि उनके छिपे होने का पता न चलने के लिए ऊंट के निशानों पर ही भेड़ों का रेवड़ छोड़कर भ्रम पैदा किया जाता था। महाभारत के उस प्रसंग में भी तो यही था कि अश्वत्थामा तो मारा गया है, पर हाथी है कि व्यक्ति यह पता नहीं है।

साहित्य में तो ऐसा आग्रह है ही नहीं। वह तो अपने संदेश के लिए सत्य और तथ्य को अपनी तरह से रचता है। पात्र, स्थान, कथा आदि सब संदेश के अनुकूल की जाती है। कविता तो है ही आत्म प्रवाह भावनाओं का। धर्म, साहित्य आदि का ध्येय हित तो है पर वह सत्याधारित भी हो यह आग्रह नहीं है। हां वह ऐसा हो तो अच्छा है।

सत्य और तथ्य वैसे भी सहज और सरलता से उपलब्ध नहीं होते हैं। ऐसा संभवत: कोई समाचार नहीं होता जिसके समग्र सच एक साथ और तत्काल उपलब्ध होते हों। जो प्रसिध्दि और प्रचार के लिए अथवा कार्यक्रम और विकास के लिए बताया जाता है उसमें भी पूर्ण सत्य कहाँ होता है? उसे भी पूरी तरह और निहितार्थ के साथ समझने के लिए छिपे तथ्यों का सहयोग लेना होगा। सरकार ने विकास का कार्यक्रम घोषित किया है तो क्या वही सब सच है जो बताया जा रहा है या वह भी जो उनके इरादों और भविष्य के लक्ष्य तथा लोगों को प्रभावित करता है। ऐसे कई प्रसंग हैं जिनमें उपद्रव को साम्प्रदायिक या जातीय बताया जाता रहा है पर उनका यह सच कहाँ ढूंढा गया कि वह दो लोगों के बीच का विवाद था जिसे कुछ लोगों ने समुदाय के साथ जोड़कर उपद्रव को एक नया विशेषण दे दिया। ज्यादातर विवाद ऐसे ही रहे हैं पर वे भी कहाँ सच को बता पाये। तात्पर्य यह कि सच और तथ्य या तो छिपाये जाते हैं या छिपे रहते हैं। उन तथ्यों के बिना वह कथा अधूरी ही कही जायेगी। इसे गोधरा-गुजरात से लेकर निर्भया या ऐसी ही अन्य समाचार कथाओं के संदर्भ में विचार करके देखें।

समाज और व्यक्ति के कल्याण को मीडिया के संदर्भ में विचार करें। मीडिया तो मध्यस्थता करता है। उसकी अपनी सूचनाएं और जानकारियां अन्यत्र स्रोत पर निर्भर हैं। दो उदाहरण हैं। इंदौर के वरिष्ठ पत्रकार जयकृष्ण गौड़ ने बताया कि इंदौर में चंदगीराम के समय हुआ उपद्रव साम्प्रदायिक रूप ले रहा था। एक व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी। रात का समय था। दो पत्रकार थे जिनके पास यह सूचना थी। प्रशासन ने उनसे आग्रह किया था कि उसे संयम से दें ताकि उपद्रव को संभाला जा सके। दोनों पत्रकारों ने विचार किया, सोचा कि समाज में वे भी हैं जो प्रभावित हो सकते हैं। तय किया कि सूचना-समाचार तो देंगे पर केवल सूचनात्मक। बहुत विवरण नहीं। उत्तेजक शब्दावली नहीं। दूसरे दिन समाचार ने उत्तेजक प्रभाव नहीं पैदा किया और समस्या पर काबू पा लिया गया। दूसरी घटना। मुम्बई में एक युवती प्रेम प्रसंग में एक टैक्सी ड्राइवर के साथ भाग गई। सम्पन्न परिवार से संबंध था। खबर पुलिस की तरफ से आइ थी। युवती के पिता ने आग्रह किया तो रिपोर्टर ने उसे दवाब माना और अमान्य कर दिया। पर एकांत में उसे युवती के पिता के शब्द याद आये कि उसका भविष्य इस प्रचार से प्रभावित होगा। रिपोर्टर ने अपने स्तर पर निर्णय लिया कि इस खबर के न जानने से भी लोगों का

कोई नुकसान नहीं है। यह ऐसी सामाजिक समस्या नहीं है जिसे हर कोई जाने ही। उसने निर्णय किया कि यह समाचार नहीं प्रकाशित होगा।

ऐसे अनेक प्रसंग और घटनायें हर संवाददाता के पास हैं और रही हैं। इन दोनों का विवेचन करके देखें कि क्या उन्होंने सच को दबाये बिना अपना काम नहीं किया है और इससे व्यक्ति और समाज का कल्याण भी हुआ है। झूठ बोलना और तथ्य को अन्य तथ्यों की भीड़ में शामिल कर उसे बनाये रखना या उसे इस तरह से बता देना कि जिससे तथ्य-सत्य अर्ध सत्य या असत्य में नहीं बदले और सूचनाओं का प्रवाह बना रहें। मसलहत या युक्ति से कहने का तात्पर्य भी यही है और इस अर्थ में धर्म भी झूठ बोलने की इजाजत नहीं देता। उसे इस तरह से बताने की सलाह देता है जिससे वह झूठ न हो जाये। कम से कम पत्रकारिता के लिए तो यह धर्म से भी बड़ा धर्म है। इसलिए कि पत्रकारिता का आधार ही सत्य और तथ्य हैं। एक मायने में वे आधार सूचनाओं की जगह लेते हैं जिनके सहारे लोग मत, विचार और योजना या व्याख्या भी करते हैं। हो सकता है कि यह विचार कुछ लोगों को पसंद न आये और वे असत्य को व्यक्ति और समाज के कल्याण का सहयोगी मानने के अपने मत पर कायम रहें। फिर भी मुझे लगता है अपनी अंतरात्मा में झांककर इसे तलाशें।

000